उत्तराखण्ड पत्रकारिता से गुजरते हुए दलित पत्रकारिता

डॉ. राम भरोसे

असि. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग प्रभारी)
श0बे0चौ0 राजकीय महाविद्यालय पोखरी (क्वीली)
टिहरी–गढ़वाल, उत्तराखण्ड
एवं
एसोसिएट
(आई.यू.सी–यूजीसी), आई.आई.ए.एस., शिमला
9045602061, 9719177319
ramharidwar33@gmail.com, dr.rambharose2012@rediffmail.com
http://teesritaali.blogspot.com

यह समय युग मीडिया का है। पत्रकारिता को आज सामान्यतः हम सभी मीडिया के नाम से जानने लगे हैं। और इसमें हमें सुविधा भी लगने लगी है। हमारे लिए यह संचार का सरल और सुलभ प्रचलित माध्यम है। मानव के विकास के क्रम में पत्रकारिता भी अपनी अवस्था में निरन्तर विकास करती आ रही है। आज संचार के अभाव में मानव का विकास असम्भव है। आज विभिन्न संचार माध्यमों ने हमारे जीवन में पत्रकारिता को इतनी व्यापकता से साथ विस्तार प्रदान किया है कि पूरा विश्व एक परिवार के रूप में एक दूसरे के करीब पाता है।

इस स्पेल में जब उत्तराखण्ड की पत्रकारिता पर कुछ काम करने के बारे में मन में सोचा तो पहला सवाल मन में कौंधा कि क्या उत्तराखण्ड की पत्र कुछ अलग है या हो सकती है? क्योंकि पत्रकारिता तो पत्रकारिता होती है, चाहें वह कहीं की भी हो। लेकिन फिर भी एक अलग भौगोलिक व सांस्कृतिक इकाई होने कारण हम अलग हैं, इसलिए हमारी पत्रकारिता भी कुछ मायनों में अलग होगी। उत्तराखण्ड पत्रकारिता का अध्ययन इस लिहाज से भी दिलचस्प होगा कि स्वतंत्रता से पूर्व और बाद की पत्रकारिता के कई सवालों का उत्तर मिल सकता है।

मानव की जिज्ञासा और मूलभूत समस्याओं से जन्म होता है 'पत्रकारिता' का। सभ्यता और संस्कृति का ज्यों–ज्यों विकास हुआ, मानव के विचारों का लेन–देन भी समय–समय पर परिवर्तित होता रहा होगा। मुद्रण कला से पूर्व में पारम्परिक वार्तालाप, सामान्य पत्र व्यवहार, डुगडुगी, शिलालेख, भाट (ढिंढोरची), संवाल लेखकों, वाद्य नवीसियों आदि माध्यमों का सहारा लिया जाता रहा। ''उत्तराखण्ड में ग्वेर (ग्वाला), हल्कारा (डाकवान), घसियारी–लखड़वेर (घास–लकड़ी लाने वाली तथा बादी (नाचने गाने वाले, एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवाज देकर व गीत गाकर समाचारों को

जन–जन तक पहुंचाने का काम करते थे।''*(डॉ. उमाशंकर थपलियाल 'समदर्शी', 'गढ़वाल में पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य', श्री कम्पयूकेषन पब्लिकेशन, श्रीनगर वर्ष 2012, पृष्ठ –55)*

उत्तराखण्ड में वर्तमान पत्रकारिता के जन्म के पीछे कोई एक घटना नहीं है. सर्वविदित है कि पुरे भारत में आधुनिक पत्रकारिता का आरंभ यूरोपियन्स के यहाँ आने के कारण हुआ. हालाँकि अंग्रेजों से पहले भी यहाँ 'अखबारनवीसी' होती थी, परन्तु उसका स्वरूप वर्तमान पत्रकारिता जैसा बिलकुल नहीं था. "राज व्यवस्था कुछ इस प्रकार बनी थी कि बादशाह स्वयं इजलाश में आकर सबसे पहले अखबारनवीसी से खबरें सुनता था. अधिकतर खबरें राजधानी और राज्य के दूसरे बड़े नगरों से संबंधित होती थीं. राज्य आज्ञाएँ, मुनादी इन्हीं अखबारों के जरिए की जाती थीं. दरबार में किये गये निवेदन और दरबार के आदेश फारसी भाषा में होते थे. संन्य लिखा पढ़ी और अखबारनवीसी भी फारसी के माध्यम से होती थी."[1] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 26)*

उत्तराखण्ड की पत्रकारिता आजादी की लड़ाई के साथ शुरू हुई और देश की आजादी से लेकर आज तक राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उत्तराखण्ड की पत्रकारिता एवं यहां के पत्रकारों का अभूतपूर्व योगदान रहा है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। ''आजादी से पहले की हमारी पत्रकाारिता के रूझान वही थे, जो राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी पत्रकारिता के थे। यानी स्वाधीनता आंदोलन, समाज सुधार और जन जागरण।'' *(प्र.स. प्रो0 देवसिंह पोखरिया व सं. डॉ. जगतसिंह बिष्ट, 'उत्तराखण्ड के रचानाकार और उनका साहित्य' भाग–2, अंकित प्रकाशन, देहरादून वर्ष 2007, पृ0– 247)* स्वतंत्रता से पूर्व देश का हर पत्रकार स्वाधीनता सेनानी भी था। उत्तराखण्ड पत्रकारिता इससे कैसे अछूती रहा सकती थी। उस समय उत्तराखण्ड के कुछ ऐसे ही पत्रकार थे, जिन्होंने सही मायनों में पत्रकारिता के मूल्य गढ़े। जिनमें प्रमुख गिरिजादत्त नैथानी, विश्वंभर दत्त चंदोला, भक्त दर्शन, हरिप्रसाद टम्टा आदि नाम तब राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित थे। ''वे केवल पत्रकार नहीं थे, वे अपने–अपने इलाकों में प्रतिष्ठित जननेता भी थे। उनके अखबार केवल सूचना देने के औजार नहीं थे, स्वाधीनता आंदोलन के मजबूत हथियार भी थे। व स्थानीय जनता के दुःख–दर्द और परेशानियों से गहरे जुड़े रहते थे।'' *(ले– गोविंद सिंह, प्र.स. प्रो0 देवसिंह पोखरिया व सं. डॉ. जगतसिंह बिष्ट, 'उत्तराखण्ड के रचानाकार और उनका साहित्य' भाग–2, अंकित प्रकाशन, देहरादून वर्ष 2007, पृ0– 248)*

आजादी के पूर्व उत्तराखण्ड में कुछ समाचार पत्र प्रकाशित हो रहे थे, ''गढ़वाल समाचार, समय विनोद, कर्मभूमि, गढ़वाल, शक्ति, तरुण कुमाऊं, क्षत्रिय वीर, गढ़देश, गढ़वाल हितैषी, उत्तर भारत, स्वराज्य, नव प्रभात, सत्यवीर, विशाल कृति, हिमालय आदि समाचार पत्र स्वतंत्रता से पूर्व उत्तराखण्ड से मुख्यतः प्रकाशित हो रहे थे।'' *(डॉ0 राकेश रयाल, 'उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का विकास', समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, वर्ष 2017, पृ0–27)*

आजादी से काफी पहले से ही यानि पहले स्वतंत्रता संग्राम 1857 की क्रांति को सफल बनाने के लिए उस समय दिल्ली से लगभग 125 हस्तलिखित पत्र निकलते थे. मैकाले के अनुसार इन पत्रों में ब्रिटिश सरकार की आलोचना की जाती थी और साथ ही गालियों के साथ व्यंग्यपूर्ण टीका–टिप्पणी भी की जाती थी.

हमारे देश में मुगल शासक अकबर के शासन काल (1556–1605) में पुर्तगाली मिशनरी द्वारा 1557 में पहला प्रिटिंग प्रेस गोवा में खोला. इसमें इसाईयत साहित्य छापा जाता था. भारत में प्रेस लगाने के पीछे मुख्य उद्देश्य भी ईसाई धर्म का ज्यादा से ज्यादा प्रसार–प्रचार हो सके. जबकि भारत में पहला मुद्रित समाचार पत्र 26, जनवरी 1780 को 'बंगाल गजट' नाम से प्रकाशित हुआ. जिसे जेम्स आगस्टस हिकी द्वारा निकाला गया. इसकी कुछ प्रतियाँ 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' कोलकाता में आज भी सुरक्षित देखी जा सकती हैं.

उत्तराखण्ड पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में यदि बात करें तो संक्षेप में यह जान लेना जरुरी हो जाता है कि उत्तराखण्ड के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में ब्रिटिश पहुंचे कैसे? "अन्तोनियो दे अन्द्रादे नामक पहला जेसिएट पादरी सन 1624 में गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर पहुंचा. वह पादरी पुर्तगाली था. वह सुरत से चला था. 'हिस्ट्री ऑफ एक्सप्लोरेशन' में लिखा है कि 30, मार्च 1624 को अन्तोनियो, फादर मैन्युअल मार्क्स और दो भारतीय ईसाई सेवकों से साथ आगरा से दिल्ली पहुंचा. वहां से वह उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा पर आने वाले तीर्थ यात्रियों के साथ श्रीनगर, गढ़वाल पहुंचा. राजधानी श्रीनगर पहुँचने पर गढ़ नरेश ने फादर अन्तोनियो से मित्रतापूर्ण व्यवहार किया और अपने संभवतः अन्तोनियो ने वहां पर गिरजाघर का निर्माण भी करवाया. वह जगह वर्षों तक पादरीबाड़ा नाम से जानी जाती रही. बाद में राजा के वजीर शंकर दत्त डोभाल ने पादरीबाड़ा में शंकर मठ की स्थापना की, जो अब तक चला आ रहा है."[2] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 28)*

इसी प्रकार ईसाई मिशनरी के कार्य को बढ़ाने के लिए अंग्रेजों ने 1850 में उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मंडल में प्रवेश किया. "लन्दन मिशनरी सोसाइटी का पादरी रेवरेण्ड बढन, जो पहले बनारस और मिर्जापुर में ईसाई धर्म का प्रचारक था, सन 1850 में अल्मोड़ा पहुंचा. पादरी बढन ने अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की और उसमें बच्चों को हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया."[3] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 28)* ऐसे धीरे धीरे ईसाई मिशनरियो के माध्यम से अंग्रेजों का उत्तराखण्ड पर एकाधिकार हो गया. हिमालय का बहुआयामी आकर्षण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को यहाँ खीच लाया. यहाँ आकार उनके दो उद्देश्य हल होने लगे एक तो इसाईयत का प्रसार–प्रचार होने लगा दूसरा उन्हें अपने बाजार के लिए कच्चा माल यहाँ से उपलब्ध होने लगा.

इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद को उत्तराखण्ड तक फैलने में किसी बड़े युद्ध या संकट का सामना नहीं करना पड़ा था. क्योंकि उस समय राज्य किसी बड़ी लड़ाई करने की हालत में भी नहीं था, ऊपर से

उत्तराखण्ड की भूमि गोरखों के शासन से त्रस्त थी. तत्कालीन शासक सुदर्शनशाह भी गोरखों से एक तरह से हार ही मान चुके थे. ऐसे में अंग्रेजों का उन्हें गोरखों से मुक्ति दिलाना उनके लिए किसी चमत्कार से कम नहीं था.

उत्तराखण्ड में अंग्रेजी राज कायम होने के बाद सबसे पहले अंग्रेज हुक्मरानों ने यहाँ की जनता का दिल जितना शुरू किया. उनकी हर सुविधाओं का ध्यान रखा, विशेष स्वास्थ्य और शिक्षा पर उन्होंने ध्यान देना शुरू किया. धीरे–धीरे यहाँ की जनता अंग्रेजी शासन को पसंद करने लगी, उसे गुलामी का एहसास होने के बजाय जनता आनंदित रहने लगी. और वो अंग्रेजों को शासक से बदले मुक्तिदाता समझने लगे. आलम यह था कि "कुछ ब्रिटिश राजभक्त तो देव मंदिरों में तक जॉर्ज पञ्चम का चित्र टांगने लगे थे. अंग्रेजों की प्रशस्ति में गीत लिखे जाने लगे. हम रंग से हिन्दुस्तानी और आचरण से काले अंग्रेज बनते चले गए. भारत का नाम इण्डिया हो गया और यहाँ रहने वाले बन गए इण्डियन."[4] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 30)*

कुल मिलाकर कुमाऊँ और गढ़वाल मंडल दोनों के निवासी अंग्रेजी सियासत को अपने लिए अच्छा समझ रहे थे. ''गोरखा शासन के बाद 1814 में उत्त्राखण्ड अंग्रेजों के कब्जे में आ गया और एक सदी तक यहाँ की जनता यह समझ ही नहीं पाई कि वह गुलाम है या आजाद क्योंकि उसने गोरखा शासन के अत्याचारों को सहा था। ''*(ले.–आनंद वल्लभ उप्रेती, प्र.स. प्रो0 देवसिंह पोखरिया सं. डॉ. जगतसिंह बिष्ट, 'उत्तराखण्ड के रचानाकार और उनका साहित्य' भाग–2, अंकित प्रकाशन, देहरादून वर्ष 2007, पृ0–245)* लेकिन उनको गुलामी का एहसास हुआ सन 1900 में जाकर हुआ और जब उन्हें यह समझ आ गया कि अंग्रेज एक शोषक के रूप में उसके ऊपर शासन कर रहा है। तो यहाँ समय बदलता गया और लोग अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में अपने स्वर मुखर करने लगे. इसका मूल कारण सम्पूर्ण देश में बहने वाली राष्ट्रीय विचारधारा, कांग्रेस पार्टी का उदय, शिक्षा का प्रसार आदि रहा.

देश के और भागों के तरह ही उत्तराखण्ड में पत्रकारिता के जन्मने की पृष्ठभूमि, भारतीय स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में, चूँकि एक आस्थाशील पीढ़ी के हाथों में थी, इसलिए जाहिर है कि जो योगदान राजनीति, इतिहास और साहित्य मिलकर नहीं कर सके– वह पत्रकारिता ने कर दिया. आजादी की चेतना जागृत करने वाले संपादकों, पत्रकारों का नाम–अनाम पीढ़ी में उत्तराखण्ड के समर्पित जुझारू व्यक्तियों को विस्मृत नहीं किया जा सकता, हालाँकि भारतीय पत्रकारिता में उत्तराखण्ड की पत्रकारिता का जिक्र उतने मुखर रूप से नहीं हुआ है, जितना होना चाहिए था.

इसी जागृति के फलस्वरूप 19वीं सदी के 7वें दशक यानि 1870 में अल्मोड़ा में पहली बार 'डिबेटिंग क्लब' नाम से एक छोटी सी संस्था का जन्म हुआ. इसके माध्यम से क्षेत्र की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जैसी समस्याओं का समाधान तलाशना शुरू किया गया. इसके बाद ही सन् 1871 में अल्मोड़ा से देश का पहला हिन्दी भाषी पर्वतीय समाचार–पत्र 'अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन बुद्धिवल्लभ पंत ने प्रारम्भ किया. हालाँकि पत्रकारिता की नजर से देखे तो

1842 से ही अंग्रेजी भाषा में मसूरी से समाचार–पत्र प्रकाशित होते रहे थे, लेकिन बाद में सभी बंद हो गये. उत्तराखण्ड के तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक सन्दर्भों में उनकी भूमिका नाममात्र ही रही. एक दो पत्रों को अपवाद स्वरूप छोड़ दें तो सभी पत्र ब्रिटिश शासन की चाटुकारिता ही करते थे. उत्तराखण्ड के पहले पत्र के विषय में वरिष्ठ पत्रकार सकलानी बताते हैं– "सन 1842 में एक अंग्रेजी व्यवसायी और समाज सेवी जॉन मेकिनन ने उत्तर भारत का पहला समाचार पत्र 'द हिल्स' का मसूरी से प्रकाशन शुरू हुआ. अखबार का प्रिंटिंग प्रेस सेमिनरी स्कूल परिसर में था. यह पत्र अपने बेहतरीन प्रकाशन व प्रसार के लिए चर्चित रहा."[5] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 32)* 19वीं सदी के चौथे दशक में भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाने वाले अखबारों में इस अंग्रेजी अखबार को उत्तराखण्ड का पहला अखबार माना जाता है. अपने आरंभ से 20 वर्ष बाद यह पत्र बंद हो गया जिसको डॉ० स्मिथ ने 1860 में पुनरू जीवित किया. 5 साल बाद यह अखबार हमेशा के लिए बंद हो गया. इसके बाद लगातार अंग्रेजी के तीन मुख्य समाचार–पत्र प्रकाशित तो हुए परन्तु कुछ समय बाद वो सभी बंद हो गये. इनमें 1870 में 'मसूरी एक्सचेंज', 1872 में 'मसूरी सीजन' और 1875 में 'मसूरी क्रोनिकल' शामिल थे.

उत्तराखण्ड की पत्रकारिता में 'मेफिसलाइट' अखबार को जानना बहुत आवश्यक है. अपने विद्रोही स्वर के कारण यह ब्रिटिश हुकूमत की आँखों की किरकिरी बन चुका था. इसके सम्पादक रानी लक्ष्मीबाई के वकील रह चुके 'मि. जान लेंग' थे. रानी लक्ष्मीबाई की शहादत के बाद मि. लेंग मसूरी आ गये और उन्होंने इस पत्र का प्रकाशन शुरू किया. यह अखबार अंग्रेजों का अखबार होते हुए भी साम्राज्य विरोधी था. जिसमें ब्रिटिश सरकार की कारगुजारियों को प्रमुखता से छापा जाता था. उत्तराखण्ड के वरिष्ठ पत्रकार सकलानी जी इसका सम्पादन समय 1845 मानते हैं. "मेफिसलाइट' अखबार झाँसी की रानी का समर्थन करता था. इस अखबार के प्रकाशन के बंद होने की कोई प्रमाणिक तिथि उपलब्ध नहीं है. 1882 व 83 के प्रकाशन अभिलेखों के कुछ अंकों में मिस्त्र लिडिल इसके सम्पादक थे. लगभग 125 वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद पत्रकार जय प्रकाश 'उत्तराखंडी' ने 'मेफिसलाइट' को पुनर्जीवित किया. वर्ष 2003 से आप इस अखबार को हिन्दी–अंग्रेजी में साप्ताहिक प्रकाशित कर रहे हैं."[7] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 33)* आगे इसी क्रम आजादी से पहले उत्तराखण्ड से कई पत्र 'द मसूरी टाइम्स' (1900), 'देहरा–मसूरी एड्वरटाइजर' (1914), 'द हेरल्ड विकली' (1924) और भी कई पत्र निकलते रहे.

उत्तराखण्ड की पत्रकारिता का अध्ययन देहरादून से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'युगवाणी' के जिक्र के बैगेर अधूरा है. क्योंकि उत्तराखण्ड की तमाम नयी–पुरानी पत्रिकाओं में यही पत्रिका का ऐसी है, जो अभी तक नियमित 1947 से प्रकाशित होती आ रही हैं. आचार्य गोपेश्वर कोठियाल ने इसके प्रकाशन की पूर्ण जिम्मेदारी निभायी, जिनके बाद इनके पुत्र संजय कोठियाल संपादक का काम संभाल रहे हैं. "टिहरी जनक्रांति के महानायक श्रीदेव सुमन के शहादत के बाद प्रजामंडल आन्दोलन शिथिल सा हो गया था. राजशाही के खौफ में प्रजा मंडल के शीर्ष कार्यकर्ता देहरादून आकर

रहने लगे थे. स्वाधीनता प्राप्ति की पूर्व बेला पर टिहरी के कतिपय बुद्धिजीवियों और प्रजा मंडल के कार्यकर्ताओं ने देहरादून में एक सम्मेलन कर प्रजा मंडल आन्दोलन को पुनरू शुरू करने का निश्चय किया. आन्दोलन को दिशा निर्देश देने और उसके समाचारों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से एक अखबार निकालने का निर्णय लिया गया. अखबार निकालने के लिए टिहरी रियासत अनुकूल जगह न थी, अतरू देहरादून से अखबार निकालने का फैसला हुआ. टिहरी के मूल निवासी, काशी विद्यापीठ के प्राचार्य श्री भगवती प्रसाद पांथरी के संपादन में 15 अगस्त 1947 को 'युगवाणी' का पहला अंक प्रकाशित हुआ. "[6] (शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 105–106) पहले यह पत्र पाक्षिक था फिर साप्ताहिक हुआ और वर्तमान में यह मासिक पत्र है. टिहरी की जनक्रांति से हर कोई परिचित है. टिहरी जनक्रांति में इस पत्रिका की अहम भूमिका रही. एक समय टिहरी रियासत में इस पत्र पर अंकुश लगा दिया गया था. इसके बाद भी इस पत्रिका को बंद नहीं होने दिया गया. यदि यह कहा जाये कि टिहरी की जनक्रांति में इस पत्र की वही भूमिका रही थी, जो रूस की क्रांति में लेनिन द्वारा सम्पादित पर 'इस्त्रा' का था.

उत्तराखण्ड पत्रकारिता में मासिक पत्रिका 'पर्वतजन' की भूमिका भी महत्वपूर्ण है, इसका सबसे पहले संपादन नत्थू सिंह वर्मा ने 1967–68 में मेरठ से किया और यह मुख्यतः तीन स्थानों से प्रकाशित होती थी, मेरठ, बिजनोर और देहरादून. हालाँकि बीच–बीच में इसके अंक निकलने बंद हो गये थे. फिलहाल बिजनोर से इसका प्रकाशन बंद हो गया है और देहरादून से यह राजकुमार धीमान के संपादकत्व में प्रकाशित हो रही हैं.

उत्तराखण्ड राज्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के संदर्भ में यह बात सिद्ध है कि स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व की पत्रकारिता तो भागों में बंटी देख सकते हैं पहली वह जो औपनिवेशिक शासन के सम्पर्क से पैदा जागरण दूसरा राष्ट्रीय आन्दोलन. हिन्दी अखबार की बात करें तो 1918 में अल्मोड़ा से 'शक्ति' साप्ताहिक पत्र का जन्म हुआ, जिसने उस दौर में क्रांतिकारी भूमिका का निर्वहन किया. इसके बाद 'स्वाधीन प्रजा', 'कर्म भूमि', 'जागृत जनता', 'गढ़देश', 'संदेश' आदि अन्य पत्रों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया. अपवादों को छोड़ दे तो अधिकतर अखबार अल्पजीवी ही रहें. कारण इसके पीछे अलग–अलग रहें. लेकिन सबका ध्येय अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाना था.

सभी जानते हैं कि वर्ष 2000 में उत्तराखण्ड उत्तर प्रदेश से अलग हुआ. लेकिन इससे पूर्व हिन्दी पत्रकारिता में जो भी काम हुआ है भले ही वो उत्तर प्रदेश में रहते हुए हुआ हो, पत्रकारिता पर प्रभाव उस पर पहाड़ी अंचल का ही था. क्योंकि उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों से जो भी हिन्दी पत्रकारिता हो रही थी, वो यहाँ की पर्वतीय क्षेत्रों में हो रही पत्रकारिता से भिन्न थी. भिन्न इस दृष्टिकोण से कि पहाड़ी अंचल में प्रकाशितध्सम्पादित होने वाली पत्र–पत्रिकाओं में यहाँ के जन–जीवन, समाज, संस्कृति, भाषा, परम्पराओं आदि की ही झलक अधिक मिलती थी. और वैसे भी उत्तराखण्ड आन्दोलन की शुरुआत तो आजादी के कुछ वर्षों बाद ही हो चुकी थी. जिसकी झलक तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में आसानी से देखी

जा सकती है. काफी लम्बे चले इस संघर्ष के परिणामस्वरूप वर्ष 2000 में उत्तराखण्ड अलग राज्य बना जो अपनी तमाम मूल विशेषताओं को लिये हुए हैं.

हिन्दी पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो उत्तराखण्ड में हिन्दी पत्रकारिता की स्थिति संतोषजनक रही है. उत्तराखण्ड में अतीत से वर्तमान की पत्रकारिता अनेक मार्गों से गुजरती हुई आज जिस मुकाम पर खड़ी है, उसे विशुद्ध व्यवसायिक पत्रकारिता नहीं कह सकते. "उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का आद्योपांत अध्ययन, सर्वेक्षण, विश्लेषण, मूल्यांकन से जो निष्कर्ष सामने आया, वह यह कि आठवें दशक के बाद यहाँ की पत्रकारिता में उबाल–सा आया और 21वीं सदी की दहलीज पर राज्य बन जांए के बाद सैलाब. राष्ट्रीय पत्रकारिता की जो मुख्य धारा है, उत्तराखण्ड की पत्रकारिता उससे हटकर नहीं है."[8] *(शक्ति प्रसाद सकलानी, उत्तराखण्ड में पत्रकारिता का इतिहास, उत्तरा प्रकाशन, उधमसिंह नगर, उत्तराँचल, 2004, पृष्ठ 50)*

सन् 1968 से आज तक उत्तराखण्ड से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की संख्या एक हजार के करीब रही है लेकिन दीर्घजीवी समाचार पत्रों की संख्या बहुत कम रही। ''उत्तराखण्ड के समाचार पत्रों के दीर्घजीवी न होने के कारण आर्थिक तो रहा ही साथ ही एक पीढ़ी के बाद ऊर्जा में ह्रास और इस क्षेत्र में अभिरूचि का अभाव रहा। उत्तराखण्ड से बाहर जाकर जो नाम और यश उत्तराखण्डी पत्रकारों ने कमाया है, वह भी कम उल्लेखनीय नहीं है। विरला ही राष्ट्रीय समाचार पत्र ऐसा रहा हो जिसमें यहां की माटी का पत्रकार अपनी धाक जमाए न बैठा हो। मनोहर श्याम जोशी, मृणाल पाण्डे, हिमांशु जोशी जैसे वरिष्ठ पत्रकारों के अलावा सैकड़ों पत्रकार और लेखक उत्तराखण्ड के मस्तक को ऊँचा बनाए हुए हैं।'' *(ले.–आनंद वल्लभ उप्रेती, प्र.स. प्रो0 देवसिंह पोखरिया सं. डॉ. जगतसिंह बिष्ट, 'उत्तराखण्ड के रचानाकार और उनका साहित्य' भाग–2, अंकित प्रकाशन, देहरादून वर्ष 2007, पृ0–245)*

उत्तराखण्ड पत्रकारिता में श्रीवृद्धि करने वाली पत्रकारिता का जिक्र भी समीचीन है– भाषाई पत्रकारिता के अंतर्गत देहरादून से 'गढ़वाल धे', 'रन्त–रैबार', 'गढ़ ऐना', 'चिठ्टी', 'जग्वाल' साप्ताहिक पत्र 80 के दशक में निकलते थे. कुमाऊँ से 'तराण' और 'व्यन्तार' मासिक पत्र निकले. उर्दू में देहरादून से शान–ए–शर्मो–हया (1979), गुल–ए–हक (1979), पेश–ए–लब्ज मासिक (1980), हल्द्वानी से 'अहानी चट्टान', 'वारंट', 'खबर संसार', 'नमक' आदि पत्र निकले. गुरुमुखी में भी वर्ष 1955 में 'क्षत्रिय वीर', 1967 में 'हेमकुंड लुक', 'पंचवटी संदेश'. क्षत्रिय वीर का प्रकाशन आज भी हो रह है. देवभूमि उत्तराखण्ड की राज्य भाषा 'संस्कृत' ही हालत सबसे खराब है उत्तरकाशी से 1983 में प्रेम लाल थपलियाल द्वारा 'हिम तरंगिणी' त्रेमासिक पत्र का सन्दर्भ में मिलता है. देहरादून निवासी डॉ. बुद्धदेव शर्मा ने इस भाषा में सराहनीय कार्य किया है. उन्होंने राज्य से सबसे पहले संस्कृत में 'वाक्' पाक्षिक समाचार पत्र का प्रकाशन और सम्पादन किया. कुछ बालोपयोगी पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ जिनमें मुख्य 'नटखट' (1935, मोहन अग्रवाल), 'नन्ही दुनिया' (1951,प्रो. लेखराज), पत्रकार उदय किरौला ने 2004 में अल्मोड़ा से 'बाल प्रहरी' त्रैमासिक निकाला. जितना काम बाल पत्रकारिता पर होना चाहिए था वह

आज तक भी नहीं हुआ. यही स्थिति महिला और दलित पत्रकारिता का भी है. महिला पत्रकारिता के विषय में देहरादून से शशी श्रेष्ठा द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'गृह और ग्रहणी' (1996), नैनीताल से डॉ. उमा भट्ट द्वारा 'उत्तरा' नामक त्रैमासिक पत्रिका का आज भी प्रकाशन हो रहा है. 1993 में पौड़ी से विमल नेगी ने 'चिराग' बाल–महिला मासिक पत्रिका निकाली, जो बाद में बंद हो गयी.

महिला पत्रकारिता के बाद बड़े खेद की बात है कि उत्तराखण्ड में दलित पत्रकारिता की स्थिति जितनी दयनीय और निराशाजनक है उतना अन्यत्र कहीं नहीं होगी. उत्तराखण्ड की दलित पत्रकारिता से पूर्व यह जान लेना होगा कि उत्तराखण्ड में दलितों को लेकर यहां का मीडिया कितना सम्वेदनशील है?

संपूर्ण देश की भांति उत्तराखण्ड भी जातीय संकीर्णता और विषमता से अछूता नहीं है। पूरे क्षेत्र में ब्राह्मणों का वर्चस्व था, दूसरे नम्बर पर क्षत्रिय थे। कवि, साहित्यकार, पत्रकार, अधिकारी, पदवीधारी और स्वाधीनता संग्राम की अगुवाई करने वाले इन्हीं के बीच से हुए। उत्तराखंड मे जितने भी आंदोलन हुए, उनमें इनकी अगुआई प्रमुख रही। जितने भी संगठन और संस्थाएं अस्तित्व में आये, सभी इनके द्वारा संचालित रहे। जितने भी अखबार निकले, सब इनके द्वारा ही सम्पादित हो रहे थे। इनके बीच भी छोटे–बडे की लड़ाई और प्रतिस्पर्धा रही। उत्तराखंड के प्रथम स्थानीय समाचार पत्र 'समय विनोद', 'अल्मोडा अखबार', यह बात उत्तराखंड के विशेष संन्दर्भ में भी कही जा सकती है कि जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर ही पत्रकारिता ने दलित वर्ग के लिए कुछ काम न किया हो तो उसे मीडिया की उदासीनता ही कहा जा सकता है। ''हिन्दी मीडिया ने हजारों वर्षों से जूते पर पॉलिश कर रहे और सडकों पर झाडू लगा रहे समाज के बारे मे छिटपुट टिप्पणियों के अलावा शायद ही कुछ उल्लेखनीय लिखा गया हो। लेकिन आरक्षण के विषय में सवर्ण हिन्दू समाज एक दिन जूते पर भी पालिश करता है, सडक पर झाडू लगाता है, तो उनके चित्र, और उनके कारनामों को हिन्दी पत्र प्रथम पृष्ठ पर छापते हैं।'' *(https://communicationtoday.net/2014/03/31/**उत्तराखंड-प्रिंट-मीडि**/31.04.2014, 16.04.2022 11:47pm)*

उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में दलितों को अपनी शादी–ब्याह में सवर्णों की भाँति डोला–पालकी के प्रयोग करने की अनुमति नहीं थी। जो दलित ऐसा करते थे, वे सवर्णों के क्रोध के शिकार होते रहते थे। इससे समाज में संघर्ष की स्थिति बनी रही। ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के वर्णों में बंटे पूरे भारत वर्ष की तरह ही गढ़वाल क्षेत्र में भी हरिजनों के प्रति भेदभावूपर्ण व्यवहार था। सामाजिक, मानसिक और आर्थिक रूप से भी यहाँ का हरिजनवर्ग पिछड़ता जा रहा था और उनके साथ खान–पान, रहन–सहन स्पष्ट परिलक्षित होता था, जिसके कारण सामाजिक, मानसिक और आर्थिक रूप से भी यहाँ का हरिजनवर्ग पिछड़ता जा रहा था और इनके साथ के व्यवहार से ऐसा लगता था कि मानव संवेदना शून्य हा गई है।'' *(डॉ. उमाशंकर थपलियाल 'समदर्शी', 'गढ़वाल में पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य', श्री कम्पयूकेषन पब्लिकेषन, श्रीनगर वर्ष 2012, पृ0–107)* अपवाद स्वरूप ही सही उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र से प्रकाशित होने वाले कुछ संवेदनशील

पत्रों और पत्रकारों ने राज्य की विशेषकर गढ़वाल के दलितों की समस्या को काफी हद तक उठाया और समाज में जातीय संकीर्णता को मिटाने का बीड़ा उठाया। '' जिनमें कर्मभूमि हिमाचल, युगवाणी, गढ़वाली, देवभूमि, गढ़देश आदि पत्रों तथा पत्रकारों में मसूरी के क्रान्तिकारी पत्रकार सत्य प्रसाद रतूड़ी, जोशीमठ के पत्रकार जंगीलाल शाह, टिहरी के पत्रकार श्यामचन्द नेगी, कोटद्वार के पत्रकार ललिता प्रसाद नैथानी, टिहरी के पत्रकार परिपूर्णानन्द पैन्यूली, नन्दप्रयाग– चमोली के रामप्रसाद बहुगुणा, पौड़ी गढ़वाल के अंतराल क्षेत्र बीरोंखाल क्षेत्र के पत्रकार सुशील कुमार निरंजन आदि ऐसे पत्रकार रहे, कि जिन्होंने हरिजनों की समस्याओं को अपनी लेखनी से उजागर किया और अपनी पत्रकारिता के माध्यम से उनका मार्गदर्शन किया। इसके बहुत अच्छे परिणाम रहे तथा उस समय के पत्र और पत्रकारों द्वारा उठाई गई हरिजनों की समस्याओं में कई का निराकरण उस काल में ही हो गया था। 'डोला पालकी' उस समय की बहुत ही महत्त्वपूर्ण और ज्वलंत समस्या थी, अतः उस पर पृथक् से लिखना ठीक रहेगा।'' *(डॉ. उमाशंकर थपलियाल 'समदर्शी', 'गढ़वाल में पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य', श्री कम्पयूकेशन पब्लिकेशन, श्रीनगर वर्ष 2012, पृ0–107)*

मीडिया राष्ट्रीय हो या क्षेत्रीय दलित–वंचित समुदायों के प्रति खास लगाव नहीं रखता। अपने सामाजिक दायित्व के साथ अपने कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए मीडिया को इस बात का अंदाजा होना चाहिए कि दलितों–वंचितों के प्रति उनकी जिम्मेदारियां सामान्यतः अन्यों की अपेक्षा अधिक है। ''उत्तर भारत में मीडिया संस्थानों में कुछ दलित तो हैं, लेकिन वे अपनी दलित पहचान के साथ नही हैं। वे अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द उस तरह से नहीं लिख सकते, जिस तरह से सवर्ण वर्ग के पत्रकार लिखते हैं। वे लगभग उसी स्थिति मे दिखाई देते हैं जैसे बिस्मिल्लाह खां जिन्होंने खुद को दलित होने से बचाने के लिए खां शब्द अपने नाम के साथ जोड़ लिया था।'' *(https:// communicationtoday .net/2014/03/31/**उत्तराखंड-प्रिंट-मीडि**/31.04.2014, 16.04.2022 11:47pm, अनिल चमडिया, मीडिया और दलित, पृष्ठ संख्या 112 से साभार)*

हालांकि इससे पूर्व के अपने स्पेल में मैं यह बात बता चुका हूँ कि किसी भी प्रकार के मीडिया में दलितों की भागीदारी नगण्य क्यों है और इसके कारण दलित समुदायों को क्या–क्या मीडिया में स्थान न मिल सकने के नुकसान भुगतने पड़ रहे हैं।

मीडिया संस्थानों में दलित समाज का प्रतिनिधित्व बहुत कम है, और इसमें कोई दो राय नहीं है कि आधुनिक लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के संस्थानों का ढांचा भी पुरातन स्थितियों में जकड़ा हुआ है। मीडिया में कभी धार्मिक, कभी अभिजात्य तो कभी लैंगिक पूर्वाग्रह उभरकर सतह पर आते रहते हैं। भारतीय समाज, जाति आधारित व्यवस्था पर विकसित हुआ है। धार्मिक सरंक्षण हेतु भी इसी को आधार बनाया जाता है। भारतीय मीडिया के एक बडे हिस्से में सांप्रदायिकता, लैंगिक और जातिगत पूर्वाग्रह एक साथ देखे जाते रहे हैं।

अपवाद स्वरुप कुछ नाम देखने–पढने को मिलते हैं. हिन्दी दलित पत्रकारिता की दृष्टि से हरि प्रसाद टम्टा 'मुंशी' (1888–1960) का योगदान अद्वितीय रहा है. उत्तराखंड के सबसे पहले दलित पत्रकार होने का श्रेय इन्ही को जाता है. इन्होंने सदियों से उपेक्षित दबे–कुचले दलित शिल्पकार समाज की आवाज को बुलंद करने के उद्देश्य से गांधी जी के 'हरिजन' (1933) पत्र के प्रकाशित होने के एक वर्ष बाद ही उसकी प्रतिक्रिया में अल्मोड़ा से 1 जून, 1934 में 'समता' नामक हिन्दी साप्ताहिक निकाला. इस ऐतिहासिक पत्र के विषय में वरिष्ठ दलित साहित्यकार व पत्रकारिता का लम्बा अनुभव रखने वाले डॉ. श्योराज सिंह 'बैचेन' अपने शोध में जिक्र करते हुए कहते हैं' "1935 में गाँधी जी पहली बार अल्मोड़ा आये और पत्रकार टम्टा से उनकी अन्तरंग भेंट हुई, पत्र के बारे में गाँधी जी ने कहा– "मुंशी हरिप्रसाद जी, मुझे अत्यंत आश्चर्य हुआ की आपने ऐसा सुंदर नाम (समता) कैसे चुन लिया". क्योंकि समता शब्द अम्बेडकर की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता था. गाँधी जी की सनातनी चेतना का नहीं. ... पत्र के 'स्वर्ण जयंती विशेषांक' में छपा है कि समता का प्रमुख उद्देश्य समत्व की भावना ही है. जैसा की स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही इसके अमुख में छपा रहता है– 'समता जनतायाश्च समतायाश्च कामना, भारते जनता राष्ट्र्म मैत्री, शांति स्वतंत्रता' "9 कैलाश नाथ पांडेय इस पत्र के बारे में लिखते हैं, "समता के शीर्ष आमुख में अछूत–दलित, आदि–हिन्दू, शिल्पकार, मजदूर तथा कृषकों का पत्र लिखा गया."[09] *(डॉ. श्यौराज सिंह ' बैचेन', अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता', अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष 2010, पृष्ठ 249–250)* इसके प्रेरणादायक लेखों से शिल्पकारों में राजनीतिक और सामाजिक जागृति उत्पन्न हुई. वर्ष 1935 में श्रीमती लक्ष्मी देवी टम्टा में इस साप्ताहिक का सम्पादकीय दायित्व संभाला. इन्हें उत्तराखण्ड की पहली दलित महिला स्नातक और पहली दलित महिला पत्रकार होने का गौरव प्राप्त है. इस पत्र को भी उच्च वर्ग की आलोचनाओं का भी शिकार होना पड़ा. काफी अन्तराल के बाद 'दया शंकर टम्टा' इस पत्रिका का संपादन कर रहे हैं. अधिकांश समय तक 'समता' उत्तराखण्ड का यह अकेला पत्र रहा है, जो दलित–वंचितों की आवाज उठाता आ रहा है. उसके बाद नन्दराम बौद्ध ने 'नागलोक' नाम से रामनगर से एक पत्र निकाला, जिसमें दलितोद्धार की बात की जाती थी, हालाँकि आर्थिक अभाव के चलते इस पत्र ने दम तोड़ दिया. उत्तराखण्ड में दलित पत्रकारिता के संदर्भ में यह एक सुकून देने वाली बात है कि वर्ष 2011 से अल्मोड़ा से एडवोकेट प्रमोद कुमार जी के संपादकत्व में एक साप्ताहिक पत्र 'वंचित स्वर' का नियमित संपादन हो रहा है. सौभाग्य से इस पत्र के सम्पादक महोदय से टेलीफोनिक वार्ता हुई. जिसमें उन्होंने उत्तराखण्ड में दलित और दलित पत्रकारिता की स्थिति पर काफी दुःख प्रकट करते हुए कहा कि "यह बड़े खेद की बात है कि उत्तराखण्ड में दलित पत्रकारिता पर न के बराबर काम हुआ है और जो लोग इस विषय पर कदम बढ़ाते भी हैं, उन्हें आर्थिक अभाव के चलते अपने कदम पीछे खीचने पड़ते हैं. 'वंचित स्वर' को भी नियमित रखने के लिए हमे बहुत आर्थिक कठिनाई से गुजरना पड़ता है. मैं अपने समाज के लोगों से यह आग्रह करता हूँ कि वो किसी न किसी रूप से दलित पत्रकारिता को बढ़ाने या जिन्दा रखने के लिए अपना सहयोग दें, ताकि जो मुख्यधारा की मीडिया दलितों की समस्याओं का जिक्र तक नहीं करती, दलित मीडिया के माध्यम से जन–जन को दलितों से जुड़ी तमाम छोटी–बड़ी घटनाओं से रूबरू कराया जा सके." उनसे बात करने और इस

विषय पर जानकारियां इकठ्ठा करते समय स्वयं ने भी यह बात महसूस की है. जहाँ एक ओर उत्तराखण्ड में पत्रकारिता क्षेत्र बढ़ रहा है, नवीन शोध हो रहे हैं, इन सबके बाद भी पत्रकारिता में दलितों की स्थिति आज भी नगण्य ही बनी हुई है. तमाम विषम परिस्थितियों के बाद भी जो इक्का–दुक्का पत्र इस सन्दर्भ में निकल रहे हैं, उनकी हालत भी कुछ खास ठीक नहीं है, कभी भी वो बंद हो सकते हैं. तो यह पुरे समाज की नैतिक जिम्मेदारी भी बनती है कि उत्तराखण्ड जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में दलित पत्रकारिता को जिन्दा रखने के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रयास होते रहने चाहिए. जिस प्रकार राजधानी से हो रही दलित पत्रकारिता को पुरे देश से हर प्रकार का सहयोग मिलता है वैसा ही सहयोग क्षेत्रीय पत्रकार और पत्रकारिता को मिलना चाहिए.

इसके साथ ही प्रसिद्ध दलित साहित्यकार, पत्रकार, आलोचक मोहनदास नैमिशराय ने उत्तराखण्ड दलित पत्रकारिता के विषय में अपने शोध के दौरान बताते हैं– "उत्तराखण्ड (देहरादून) से 2010 में 'नागफनी' पत्रिका आरंभ हुई. इसकी संपादक सपना सोनकर हैं जो युवा लेखक रूपनारायण सोनकर की पत्नी है. पत्रिका शुद्ध रूप से साहित्यिक है, जो पाठकों के बीच विमर्श को जन्म देती है. उधम सिंह नगर से गोपाल सिंह गौतम के संपादन में 'सम्यक पब्लिक भारत' का प्रकाशन भी हो रहा है. इसके अलावा उत्तराखण्ड से ही चन्द्र वल्लभ के स्वामित्व तथा संपादन में पिछले चार वर्षों से 'शिल्पकार टाइम्स' (पाक्षिक) भी छप रहा है. इन दिनों इसका कार्यालय दिल्ली में हो गया है."[10] *(कैलाशनाथ पांडेय, 'हिन्दी पत्रकारिता संवाद और विमर्श,' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2017, पृष्ठ 90)*

मीडिया में दलितों की खराब स्थिति का एक पहलू यह भी है कि यहां दलित पत्रकारों की संख्या नगण्य है। और लोग काम कर भी रहे हैं उन्हें संवाददाता से ऊपर का पद प्राप्त नहीं है। ''उत्तराखंड के प्रमुख समाचार पत्र भी दलितों के प्रति संवेदनशील नहीं है। इन समाचार पत्रों में कभी कभार ही दलितों से जुड़े समाचार प्रकाशित होते हैं। यहां भी प्रस्तुतीकरण एक बड़ा मुद्दा है। यदि दलितों से संबधित कोई घटना या हार्ड न्यूज हो तो भी उसे बडे फीके ढंग से पेश किया जाता है। देहरादून के समीप ही जौनसार भावर जहां प्रदेश के सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति के लोग रहते हैं वहीं दूसरी ओर हरिद्वार में सर्वाधिक अनुसूचित जाति की आबादी रहती है। बावजूद इसके इन दोनों क्षेत्रों में दलितों के सवालों को उठाने वाले पत्रकारों और संवाददाताओं की खासी कमी है।''*(https:// communicationtoday .net/2014/03/31/उत्तराखंड-प्रिंट-मीडि/31.04.2014, 17.04.2022 10:47am)*

उत्तराखण्ड का कोई भी मीडिया हो सबका ध्यान राजधानी देहरादून की ओर है। इस कारण पिछड़े पर्वतीय क्षेत्रों मे क्या हो रहा है, न तो कोई जानने को उत्सुक है और न मीडिया दिखाने में। यही कारण है यहां के दलित कभी भी क्रांतिकारी स्वरूप में अपनी बात रखने के लिए आगे नहीं आये। यहां के समाचार पत्रों अमर उजाला, दैनिक जागरण, दून दर्पण, शाह टाइम्स और गढ़वाल पोस्ट में कभी–कभी दलितों की समस्याएं देखने को मिलती हैं। शंभूनाथ शुक्ल, राजनाथ

सिंह सूर्य, हृदय नारायण दीक्षित, अनिल चमड़िया, राजीव सचान, श्यौराज सिंह बेचौन, डा. विकास कुमार, डॉ. उदित राज, मोहन दास नैमिशराय, भारत डोगरा जैसे कुछ स्तंभकार समय–समय पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में दलित समस्याओं के बारे में लिखते आ रहे हैं। लेकिन आज भी इस दिशा को स्थायी व निरन्तर किये जाने की जरूरत है। दूसरी ओर निश्चय ही उत्तराखण्ड की कुछ मासिक पत्रिकाएं, साप्ताहिक व पाक्षिक समाचार पत्र दलितों के सवालों को मजबूती से उठा रहे हैं। जिनमें 'उत्तराखंड शक्ति', 'युगवाणी', 'पर्वत पीयूष', 'नैनीताल समाचार', 'आज का पहाड़', 'शक्ति', 'स्वाधीन प्रजा', 'पर्वतजन' व 'नागरिक', 'मिशन इन हिमालय', जैसी पत्र–पत्रिकाएं दलितों के सवालों को मुखरता से उठा रही हैं।